II

'धाँधलेश्वर' व्यंग्य संग्रह में चित्रित सामाजिक व्यंग्य

प्रा. नितीन विठ्ठल पाटील
विठ्ठलराव पाटील महाविद्यालय, कळे
मो. 9049959282
ई-मेल- nitinpatil9282@gmail.com

सारांश -

गोपाल चतुर्वेदी जी व्यंग्य को हथियार के रूप में इस्तेमाल करनेवाले व्यंग्यकार हैं। 'धाँधलेश्वर' इस व्यंग्य-संग्रह में उन्होंने सामाजिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों और विडंबनाओं को पत्तों-रेषों सहित उद्घाटित करने का प्रयास किया है। इस व्यंग्य संग्रह में वे बदलते नैतिक मूल्यों एवं दम तोड़ते सामाजिक सिद्धांतों और आदर्शों पर व्यंग्य के तीखे प्रहार करते हुए पाठकों को सोचने के लिए मजबूर करते हैं। चतुर्वेदी जी भारतीय समाज पर हावी होती पाश्चात्य संस्कृति का पर्दाफाश करते हुए हमारी गौरवशाली परंपरा और अस्तित्व में बिखराव की स्थिति पर चिंता भी व्यक्त करते हैं। फैशन परस्ती में जकड़े हुए समाज की बदलती सोच पर इस व्यंग्य संग्रह में व्यंग्य के कोड़े लगवाए हैं। साथ ही गोपाल चतुर्वेदी जी ने युवाओं की टुच्ची मानसिकता और असंवेदनशीलता को पारिवारिक संबंधों में हो रहे विघटन का प्रमुख कारण माना है। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में नारी पर हो रहे अन्याय अत्याचार को वाणी प्रदान करते हुए दहेज जैसी अमानुष प्रथा की व्यंग्य के माध्यम से पोल खोलने की कोशिश व्यंग्यकार ने इस व्यंग्य संग्रह में की है। इनके व्यंग्य जनता की सोच में बदलाव लाने के लिए एक सार्थक पहल करते हुए नजर आते हैं।

बीज शब्द -

व्यंग्य, विसंगति, विडंबना, विकृतीकरण, सभ्यता, नैतिक मूल्य, सनक।

प्रस्तावना -

वर्तमान समय में मनुष्य जीवन अत्यंत विकसित हो चुका है। मनुष्य ने जीवन को सहज और सुलभ बनाने के लिए अनेक वैज्ञानिक अविष्कारों को जन्म दिया है। जिससे वह अनेक क्रियाकलापों को आसानी से अंजाम देने लगा है। अपने जीवन को गतीमय बनाते-बनाते वह अपने सामाजिक कर्तव्यों को भूलता चला जा रहा है। जीवन की भागदौड़ में परिवार और समाज को वह पीछे छोड़ता चला जा रहा है। अपने

स्वार्थों की पूर्ति के लिए सामाजिक सिद्धांतों को पैरों तले रौंद रहा है। कई लोग तो ऐसे हैं जो समाज के अस्तित्व पर भी प्रश्नचिह्न लगाने लगे हैं। कुछ असामाजिक तत्त्व समाज में जहर घोलने का काम भी कर रहे हैं। आज भी अनेक अनिष्ठ प्रथा और परंपराएँ समाज में मौजूद हैं जो इन्सानियत का गला घोटने का काम कर रही है। इन विपरीत स्थितियों को देखकर साहित्यकार कैसे चुप रह सकते हैं। व्यंग्य रचनाकारों ने तो समाज जीवन में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों और विडंबनाओं का पर्दाफाश करते हुए बेहतर समाज जीवन की अपेक्षा व्यक्त की है।

सामाजिक व्यंग्य -

गोपाल चतुर्वेदी जी ने व्यंग्य की दुनिया में अपनी एक अलग पहचान बनाई है। उनका 'धाँधलेश्वर' यह व्यंग्य-संग्रह बहुत ही मशहूर हो चुका है। समाज जीवन से प्राप्त अनुभवों को इन्होंने साहित्य के माध्यम से व्यक्त करने की कोशिश की है। गोपाल चतुर्वेदीजी ने राजनीतिक विसंगतियों के साथ सामाजिक विसंगतियों को प्रमुख रूप में व्यंग्य का निशाणा बनाया है। विविध क्षेत्रों में बढ़ते दुराचारों और अनाचारों को व्यंग्य के आड़े हाथों लिया है। इनके व्यंग्य समाज जीवन में व्याप्त विभिन्न पीड़ाओं और वेदनाओं को वाणी प्रदान करते नजर आते हैं। इनकी व्यंग्य ताकत को पहचानते हुए सुभाष चंदर जी लिखते हैं- ''गोपाल चतुर्वेदी व्यंग्य जगत् के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। परसाई युग की भाँति इस युग में भी उन्होंने अपनी सरोकारपरक व्यंग्यधर्मिता से पाठकों को चमत्कृत किया है। वह देश के जाने-माने व्यंग्य स्तंभकार हैं।''[1] गोपाल चतर्वुेदी जी ने 'धाँदलेश्वर' व्यंग्य संग्रह में समाज के गिरते नैतिक स्तर, बिगड़ते मानवीय संबंध, आधुनिकता के नाम पर पलती अपसंस्कृति और गिरते सामाजिक ढाँचे को चित्रित कर समाज मन की आँखें खोल देने का प्रयास किया है। समाज में बढ़ती विकृतियाँ चतुर्वेदी जी को अस्वस्थ कर व्यंग्य को जन्म देने लगी हैं।

समाज के सुचारू रूप से संचालन के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में कुछ सामाजिक मूल्य और सिद्धांत निर्धारित किए जाते हैं। जिसका पालन हर व्यक्ति को करना होता है। कभी-कभी समय के अनुसार इन मूल्यों और सिद्धांतों में परिवर्तन होता रहता है। लेकिन आज मनुष्य सामाजिक मूल्यों को पैरों तले रौंदने लगा है। साथ ही कुछ नए मूल्य भी स्थापित हो चुके हैं। जिसका बुरा असर भारतीय समाज व्यवस्था पर पड़ने लगा है। इस संदर्भ में व्यंग्य की तीखी मार करते हुए गोपाल चतुर्वेदी जी लिखते हैं-

''अब सारे-के-सारे मुंडी नहीं हिलाएँ तो क्या उसूलों के जंगल में जाएँ। किसी पागल कुत्ते ने काटा है, जो सुविधा, शौहरत और सहूलियत को तिलांजलि दें और वह भी किसलिए ! क्या हासिल होगा। आधुनिकता के शब्दकोश में सिद्धांत का पर्याय सिर्फ सनक है।''[2] ईमानदारी, सच्चाई और नैतिकता कमजोरी के सूचक बने हुए हैं। आज कोई भी सत्य और न्याय के रास्ते पर चलना नहीं चाहता है। अपने नापाक इरादों को अंजाम देने के लिए सिद्धांतों का गला घोटने में पीछे नहीं हटता है। झूठी प्रतिष्ठा स्थापित करने के लिए आत्मसम्मान को भी दाँव पर लगाया जा रहा है।

आज की भागदौड़ भरी जिंदगी में पारिवारिक रिश्ते-नाते दम तोड़ने लगे हैं। बढ़ती अपेक्षाओं और स्वार्थों ने पारिवारिक ढ़ाँचे को ही ढुलमूल कर दिया है। प्रेम, ममत्व और त्याग की भावना धीरे-धीरे खत्म होने लगी है। आज परिवारों में एक-दूसरे को वस्तु के रुप में देखा जा रहा है। जैसे कोई भी वस्तु जबतक उपभोग करने योग्य है तबतक उसको अपने पास रखो, नहीं तो उसे कबाड़खाने में फेंक दो। इन विपरित परिस्थितियों पर व्यंग्य का नुकीला प्रहार करते हुए 'पहचान का संकट' इस व्यंग्य निबंध में गोपाल चतुर्वेदी जी लिखते हैं- ''जब तक कोई रत्ती भर भी उपयोगी है, उसका उपभोग करो। उसके बाद छुट्टी कर दो। इस संदर्भ में मुरगी और संयुक्त परिवार के प्रति हमारा नजरिया एकसा है। भावनाओं के ज्वार में कोई कब तक बहेगा ? वरना हिंदुस्थान में सिर्फ एक ओर बूढ़े और दूसरी ओर बेकार मुरगे-मुरगी रहेंगे। हमें बच्चों और जवानों का सोचना है। गैर इस्तेमाली बूढ़े, जानवर हों या इन्सान, उनकी जरूरत क्या है ?''[3] सभी परिवार समाज के ही हिस्से होते हैं। पारिवारिक संबंधों में हो रहे विघटन का परिणाम समाजव्यवस्था पर भी होने लगा है। जो माता-पिता अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए दिन-रात मेहनत करते हैं। अनेक कष्टों और पीड़ाओं को वे झेलते रहते हैं। लेकिन जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो बूढ़े माँ-बाप की तरफ हिकारत भरी नजरों से देखते हैं। जिन सशक्त कंधों ने परिवार का बोझ उठाया था अब वे खुद ही अपने बच्चों के लिए बोझ बन जाते हैं। गोपाल चतुर्वेदी जी ने संतानों की इस टुच्ची मानसिकता पर व्यंग्य के कोड़े लगवाए हैं। साथ ही युवाओं की आँखें खोलने का प्रयास भी किया है।

भारतीय समाज दिन-ब-दिन पाश्चात्य सभ्यता के मायाजाल में फँसता चला जा रहा है। अपने जीने के तौर-तरीके और रहन-सहन अब बकवास लगने लगे हैं। हम अपनी सांस्कृतिक पहचान भी खोने लगे हैं। सदियों से चली आ रही हमारी गौरवशाली परंपरा को हमने नकारना आरंभ कर दिया है। पाश्चात्य लोगों के

आचार-विचार, रहन-सहन, वेशभूषा और संगीत हमें अब अपने लगने लगे हैं, जिससे हमारा सामाजिक ढाँचा ही चरमराने लगा है। भारतीय समाज के इस बदलते रूप पर व्यंग्य का विषैला प्रहार करते हुए गोपाल चतुर्वेदी जी 'भारत का दर्शन युग' इस व्यंग्य रचना में लिखते हैं- ''भजन-ध्यान का स्थान टी.वी. के विज्ञापन, चित्रहार और पश्चिमी गायन ने ले लिया है। पठन-पाठन की जरूरत ही क्या है ! नाचती-गाती अर्धनग्न नायिकाओं को मुँहबाये निहारना काफी नहीं है क्या ? पश्चिम के प्रगतिशील देश यही सब करते-करते प्रगति की चोटी पर चढ़े हैं। हमें भी तरक्की करनी है। हम क्यों पीछे रहें ?''[4] इस तरह चतुर्वेदी जी भारतीय समाज पर बढ़ते पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव को यहाँ रेखांकित करने की कोशिश करते हैं। अपने ही आदर्शों, उसूलों और मूल्यों को त्यागकर हम अपने ही अस्तित्व को किस तरह मिटाते चले जा रहे हैं, इस तरफ भी व्यंग्यकार ने हमारा ध्यान खींचने की कोशिश की है।

आधुनिक काल में भी हमारी सोच पुरानी और दकियानूसी है। आज भी हमारा समाज पुरुष प्रधान ही है। जिसमें नारी के लिए कोई स्थान नहीं है। नारी केवल एक वस्तु तक ही सीमित रह चुकी है। परिवार हो या समाज, नारी के विचारों और इच्छाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। आज भी नारी पुरुषों के षड्यंत्र का शिकार होती हुई नजर आती है। पुरुषों ने उसे देवी का रूप देकर दासी बनाकर रखा है। नारी की आवाज को दबाएँ रखने के लिए उसे समता के झूठे दावों में फँसा दिया जाता है। समाज में नारी पर हो रहे इन अत्याचारों पर व्यंग्य का कठोर प्रहार करते हुए गोपाल चतुर्वेदी जी 'विवाह और धर्म' इस व्यंग्य रचना में लिखते हैं- ''पति को परमेश्वर मानना पुरुष भगवान का बनाया एक खुशनुमा कानून है। महिलाओं की समता की बातें जन-मन को भरमाने की हैं। पति सेवा की भावना परलोक सुधारने की। हम दफ्तर के बगीचे में टहलकर तरोताजा घर आते हैं। हमारी थकी-हारी पत्नी तत्काल चाय पेश करती है। जब हम सपनों में खोये रहते हैं, बच्चों को स्कूल भेजती है। हमारा नाश्ता और लंच का डिब्बा तैयार करती है। यह प्रभु-कृपा का छोटा-सा मामूली नमूना है।''[5] यहाँ पर व्यंग्यकार ने पुरुषों द्वारा बनाई गई अन्यायी व्यवस्था पर आक्रोश प्रकट किया है। नारी पर होनेवाले अन्याय-अत्याचार चतुर्वेदी जी को अंदर से व्यथित कर देते हैं। उन्हें ऐसी व्यवस्था पर ग्लानि निर्माण होने लगती है। वह ग्लानि व्यंग्य का रूप लेकर बाहर निकलती है ।

आज समाज का हर व्यक्ति भौतिक सुखों के पीछे भागता हुआ नजर आने लगा है। जिसके लिए वह किसी भी हद तक गिरने के लिए तैयार है। अब उसे अपने गौरवशाली सांस्कृतिक परंपरा से कोई लेना-देना नहीं है। देश में आज भी कई लोग भूख से तड़पते हुए नजर आते हैं। उसी समय पूँजीपति वर्ग फैशन के नाम पर धन की बर्बादी करने लगा है। फैशन परस्ती में जकड़ा हुआ वर्ग सामाजिक सिद्धांतों और आदर्शों को पैरों तले रौंदने लगा है, जिससे विकृतीकरण और विद्रूपीकरण निर्माण होने लगा है। आजकल तो कपड़े न पहनना भी एक फैशन बन चुकी है। सुंदर दिखना सबका प्रमुख कर्तव्य बना हुआ है, जिसके लिए बाजार में अनगिनत मेकअप के साधन उपलब्ध होने लगे हैं। ऐसे फैशन परस्ती में जकड़े हुए समाज पर व्यंग्य का दाहक प्रहार करते हुए 'सौंदर्य की हाट' व्यंग्य रचना में गोपाल चतुर्वेदी जी लिखते हैं- ''सुंदरता को कुछ मुर्ख अब भी प्रभुप्रदत्त वस्तु मानते हैं। ऐसा नहीं हैं। जैसे शरीफजादों को उनके दरजी बनाते हैं और सुंदरता को मेकअप। खूबसूरती सिर्फ एक प्रोड़क्ट है। इसे बनाना और मार्केट करना हमारा राष्ट्रीय दायित्व है। लोग भूखे-नंगे भले रहें, पर सुंदर दिखेंगे तो कुछ-न-कुछ कमा ही लेंगे।''[6] आज होने से ज्यादा दिखना जरूरी हो चुका है। आज समाज की हालत ऐसी है कि रोटी मिले ना मिले फैशन के साधन मिलना जरूरी है ।

आधुनिक युग में भी भारतीय समाज अनेक अनिष्ठ रूढ़ी प्रथा परंपराओं में जकड़ा हुआ है। जिसका परिणाम पूरी सामाजिक व्यवस्था पर होने लगा है। सांस्कृतिक धरोहर के नाम पर कुछ असामाजिक तत्त्व लोगों को दोंनो हाथों से लूट रहे हैं। दहेज जैसी अमानुष प्रथा तो भारतीय समाज को लगा हुआ एक कलंक है। हमने इतनी सारी ऊँचाईयाँ हासिल कर ली हैं किंतु हम इस लज्जास्पद प्रथा से बाहर नहीं निकल पा रहे हैं। दहेज के चलते आज भी कितने सारे परिवार रास्ते पर आने लगे हैं। कितने सारे लड़कियों के पिताओं ने आत्महत्याएँ कर ली हैं। कितनी सारी लड़कियों को जिंदा जला दिया गया है। इसी कारण तो परिवार में लड़का होना शुभ घटना मानी जाती है। ऐसी कुप्रथा का पर्दाफाश करते हुए गोपाल चतुर्वेदी जी लिखते हैं- ''जिंदगी भर बेटे को किसी लायक बनाने में माँ का अहम रोल है। वह अपनी हर खुशी लुटाकर लड़के को इस काबिल बनाती है कि शादी की हाट में उसकी ढ़ंग की किमत लग सके। इसके बावजूद कुछ नासमझ दहेज जैसी पवित्र और पारंपारिक प्रणाली को हेय मानते हैं। स्कूटर, कार, सोफा, बरतन, गैस सबकी दुकान पर कीमत है। पालतू कुत्ते तक का मोल है। दुनिया में कुछ भी फ्री नहीं है। फिर उनके लड़के को भेंट-

उपहार से क्यों परहेज हो।''[7] इस तरह समाज में ऐसी अनेक अनिष्ठ प्रथाएँ हैं जो सामाजिक आदर्शों का गला घोंट रहीं है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि गोपाल चतुर्वेदी जी ने 'धाँधलेश्वर' व्यंग्य संग्रह में भारतीय समाज व्यवस्था में व्याप्त विकृतियों और बुराइयों पर व्यंग्य के अत्यंत कठोर प्रहार किए हैं। चतुर्वेदी जी ने बिगड़ते मानवीय संबंधों और बदलते सामाजिक मूल्यों पर चिंता व्यक्त करते हुए पाठकों को सोचने के लिए मजबूर किया है। युवाओं की अकर्मण्यता और असंवेदनशीलता, पुरूषप्रधान समाज व्यवस्था, पारिवारिक संबंधों का बिखराव और फैशनपरस्ती में जकड़े हुए समाज की व्यंग्य के माध्यम से पोल खालते हुए लोगों को जागरूक रहने का संदेश भी दिया है। साथ ही दहेज जैसी अमानुष प्रथा भारतीय समाज व्यवस्था को किस तरह कलंकित कर रही है, इसकी ओर भी हमारा ध्यान खींचने का काम व्यंग्यकार ने किया है। गोपाल चतुर्वेदी जी ने सामाजिक क्षेत्र में फैली इन विसंगतियों के लिए जनता को दोषी मानते हुए उन्हें व्यंग्य के कठघरे में खड़ा कर दिया है। साथ ही स्थितियों में सुधार के लिए पाठकों के वैचारिक शक्ति को खाद ड़ालने की कोशिश भी की है।

संदर्भ ग्रंथसूची

1) सुभाष चंदर - हिंदी व्यंग्य का इतिहास, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 45

2) गोपाल चतुर्वेदी - धाँधलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2008, पृ. 89

3) वही, पृ. 342-343

4) वही, पृ. 159

5) वही, पृ. 345

6) वही, पृ. 34

7) वही, पृ. 96